इन्द्रधनुष के पार

(काव्य सग्रह)

शीला व्यास

श्री चन्दन प्रकाशन
गगाशहर बीकानेर

प्रकाशक श्री चन्दन प्रकाशन
शीला सदन, पुरानी लेन
पो गगाशहर 334001, बीकानेर (राज)

प्रथम सस्करण जनवरी, 1998
बसत पचमी, माघ शुक्ला पचमी, सवत् 2054

सम्पर्क सूत्र श्री चन्दन प्रकाशन
शीला सदन, पुरानी लेन
पो गगाशहर-334001, बीकानेर (राज)

मूल्य सौ रूपये


राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर
के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

मुद्रक कल्याणी प्रिण्टर्स
मालगोदाम रोड बीकानेर

Indra Dhanush Ke Paar Smt Sheela Vyas Rs 100

इन्द्रधनुष के पार

(काव्य संग्रह)

सत साहेब



श्री सद्–गुरू चरण कमलेभ्यो नम

अनन्त यात्रा के महान सयाति

एव

सहज साधना के अमर साधक

सदगुरू श्री

अवधूत शिरोमणि श्री चन्दन देवजी महाराज

को

शत–शत नमन

साहित्य सृजन की डगर पर जिसने अंगुली पकड़ कर
चलना सिखलाया
एवं
निरन्तर रचना धर्मिता की ओर प्रोत्साहित किया है
उस महान विभूति
ममतामयी
इन्द्रधनुष के पार
अनन्त लोक में विराजित
मातृश्री



श्रीमती विद्यादेवी
को
सादर समर्पित

प्राकल्प

इन्द्रधनुष के पार' का सृजनात्मक वैशिष्ट्य

'इन्द्रधनुष के पार नामक काव्य सग्रह मे प्रकाशित सैतीस कविताओ के कथ्य स्वर मे आधुनिक भावबोध की अनुगूज है तथा शैल्पिक प्रतिमानो मे सहज सप्रषण की भगिमाए लक्षित है। इस सग्रह स पूर्व सन १६८६ म प्रकाशित अनुभूति के स्वर शीर्षक उनके प्रथम सग्रह मे भी रचना शिल्प का सहज स्वरूप ही दृष्टव्य था हॉ कथ्य की बुनावट म सवेदन–सूत्र यहा भिन्न हो गए हैं। अनुभूति के स्वर मे मातृ गृह की मार्दव स्मृतियो नारी के क्रन्दन प्राकृतिक सुषमा की समोहक छविया और रोमाटिक भावबोध से अनुरजित अनुभूतियो के शब्द चित्र कविताओ के कैनवास पर उकेरे गए थे किन्तु पूर्व सग्रह के लगभग एक दशक पश्चात प्रकाशित समीक्ष्य कविता सग्रह मे रचनाओ के तेवर निश्चयत भास्वर एव प्रखर है। इन रचनाओ मे समकालीन जीवन और समाज की ज्वलन्त समस्याओ गभीर राष्ट्रीय सन्दर्भो एव मानवीय चतना को आहत करने वाली गहन सवेदनाओ को उजागर किया गया है। लगता है विदुषी कवयित्री क भावबोध का निरन्तर परिष्कार हुआ है। उसने व्यक्ति चेतना के सस्कारो को समूहहित के समुन्दर मे खगाल कर सृजनधर्मी दायित्व का निर्वाह किया है।

इन रचनाओ के परिप्रेक्ष्य मे कविता सग्रह के शीर्षक की अर्थवत्ता एव साथकता के विश्लषण स समीक्षण के बिन्दुआ की शुरुआत करे। इन्द्रधनुष सतरगी होता है तथा काव्य सृजन मे प्राय सतरगी कल्पनाए साकार भी होती है। रचनाकार अनुभूति कोष के रगो की तरगो मे डुबोकर रचनाओ की पारदर्शी रूप छवियो का अकन करता है किन्तु इन्द्रधनुष के पार पहुँचने का अभिप्राय रग की तरगो से निकल कर एक यथार्थ तलस्पर्शी धरातल पर खडे होकर निर्मम वास्तविकताओ स साक्षात्कार करना गहन सवेदनाओ के जुझारू तेवरो से रूबरू होना तथा चतुर्दिक परिवेश के चीत्कार और हाहाकार के अन्तराल से उभरते स्वरो से रचनापट को बुनना है। इस सग्रह मे श्रीमती शीला व्यास सतरगी इन्द्रधनुषी चेतना से पार जनाक्रोश नारी

क्रदन पर्यावरण प्रदूषण आतक की त्रासदी विकास रथ के अवराध समष्टि के सुख लोकतात्रिक आस्था आम आदमी की जागरूकता नव विहान तथा जागरण का उद्‌घोष करती दिखाई देती है। 'सशय के सर्प कैसे हमारी सवेदनाओ को सर्द कर रहे है ? वे विकास के रथ को अवरुद्ध कर जडता की दलदल उगा रहे हे ? यह सब इन कविताओ मे दृष्टव्य है। आज के हाहाकार भरे माहौल म भी माटी का कर्ज आह्‌वान करता हे कि हम समपणशील नयी पौध का उगाए नवविहान का स्वागत करे विकास रथ को गतिमान बनाये जडता की स्थितियो को नकारे और समष्टि का सुख सर्वोपरि माने। शीला जी ने पल्स पोलियो अभियान दहेज दानव कलियो के रूप मे बालिकाओ के प्रति ममत्व उजली पॉखो के रूप मे प्राकृतिक सुषमा के निरूपण को भी कविताओ मे सजोया है। समग्रत कथ्यमूलक दृष्टि से समीक्ष्य सकलन की कविताए शीला जी के रचना क्रम के विकास और रचनाधर्मी गतिशीलता को रेखाकित करती है। सच तो यह है कि अनुभूति के स्वर की कवयित्री 'इन्द्रधनुष के पार जाकर जीवन्त ज्वलन्त और प्रखर सवेदना सन्दर्भो को सजोती हुई ऐसे रचना ससार को प्रतिबिम्बित करती है जिसमे आतक के गर्भ से आस्था विद्रोह की धुध मे विश्वास सशयो के सर्प दश मे जागरूकता का बदलाव लक्षित होता है और यही प्रस्थान बिन्दु है जो 'इन्द्रधनुष के पार की सृजनात्मक सार्थकता प्रतिष्ठित करता है।

समीक्ष्य कविता सकलन की रचनाओ के रचनात्मक वर्चस्व का दिग्दर्शन कतिपय काव्याशो के माध्यम से करे।

लोकतात्रिक राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अनन्य आस्था व्यक्त करते हुए शीला जी जनशक्ति का प्रतिमान मतदान रूपी तीसरी शक्ति को मानती है जिसे शिव के त्रिनेत्र से उपमित किया गया है—

'लोकतत्र मे जनता जागरूक है।
वह आप से बेबाक सवाल कर सकती है
अभियाग लगा सकती है
और खडा कर सकती है कटघरे मे

  

उसके पास शिव की वह तीसरी शक्ति है
जो बदल डालती है सम्पूर्ण व्यवस्था को। (पृ २)

मंदिर और मस्जिद के टकराव को धर्मान्धता का जुनून ही नहीं वरन् सशय का सर्प कहकर कवयित्री ने निदा की है—

अधियारे दबे पॉव आने लगे
कट गए आस्थाओ के सुन्दर सघन वन
सशयो के सर्प कुलबुलाने लगे
यह गौतम की धरती यह गाधी का घर
आज मन्दिर और मस्जिद टकराने लगे। (पृ ६)

नारी चेतना की मर्मस्पर्शी रचना 'तस्वीर मे नारी की यथार्थ स्थिति को फ्रेम मे जडी यौवनमयी युवती से भिन्न माना गया है। (पृ ६) 'पहल शीर्षक रचना मे राजनीतिक विडम्बना से परिपूर्ण परिदृश्यो का निरूपित किया गया है क्योकि–

'राजनीति के गलियारा मे
सत्ता की शतरज विछी है
❖ ❖ ❖
सत्ता सुख एक महान् उपलब्धि है
तभी ता सारे मूल्य दरकिनार कर
शपथ समारोह कराए जाते है। (पृ १५)

हमारे युग मे उपभोक्तावादी सस्कृति के अपरिमित विस्तार और कटु परिणामो को सकेतित करके कवयित्री ने अपनी रचनाधर्मिता के आधुनिक भावबोध से जुडाव का परिचय दिया है। हमारी चिन्ताग्रस्त मानसिकता का एक कारण भोगवादी वृत्ति भी है जिसका परिणाम अन्तहीन रिक्तता का बोध है। यथा–

'घर के खाली स्थान को भरते रहते है
निरर्थक निर्जीव यात्रिक वस्तुओ से
पर मन का खालीपन कभी नहीं भरता
❖ ❖ ❖
उपभोक्तावादी सस्कृति मे जी रहे हैं हम सब
इसीलिए मन सदा ही रीता रहता है
नहीं भरता है उसका रीतापन। (पृ १८)

बुजुर्गो की विवशता को दर्शाती कविता 'दो हाथ है जिसमे वार्द्धक्य की निराशा का बोध मर्मस्पर्शी है। यथा–

'प्राथना की मुद्रा म
कुछ श्वासो की याचना करते

अजलिबद्ध वे दो हाथ
अपने मुँह का निवाला निकालकर
पेट काटकर गृहस्थी का बोझ उठाते
वे दो हाथ

❖ ❖ ❖

कतराते है स्पर्श से
उन्हे डर है कहीं चीजे न टूट जाये
स्वप्न न बिखर जाये
क्योकि किसी काम के नहीं रहे है
वे दो हाथ।

आपाधापी के इस युग मे सवेदनशून्यता को कवयित्री ने जडता की स्थिति से उपमित किया है। इसके अनेकानेक कारणो मे एक प्रकृति से पलायन एव पराड मुखता भी है। यथा–

अब नहीं चौकाती है हमे
पीठ मे छुरा भौकने वाली घटनाए
विस्फोट और अपहरण की खबरे
इक्कीसवीं सदी मे जाने वाली हमारी पीढी
मानस मे अभी से जी रही है
आदिम काल के उस हिसक परिवेश मे।

❖ ❖ ❖

वृक्षो के नीचे ध्यानावस्थित
हमारे नरपुगव कितने करुणामय थे।
हम प्रकृति मे दूर होते जा रहे है
इसलिए सवेदनहीन होते जा रहे है।

समीक्ष्य सकलन की अनेक कविताए समसामयिक चेतना और परिवेशगत प्रतिक्रियाओ के प्रति कवयित्री की सजग मानसिकता की परिचायक है। 'पहली बार' शीर्षक रचना मे विकलागो की चेतना 'पहाड की नारी' मे पर्यावरण चेतना 'नवविहान' मे प्रौढ शिक्षा और साक्षरता आदोलन 'माटी का कर्ज' मे स्वातन्त्र्य चेतना 'त्रासदी' म बाढ की विपदा 'समष्टि का सुख' मे बलिदानो के एतिहासिक सन्दर्भो तथा 'प्रायश्चित' मे पोलियो टीकाकरण अभियान का उजागर किया गया है। 'खरोच' नामक रचना मे इन्द्रधनुषी रगो के बिखराव के लिए भौतिकतावादी मूल्यो की दौड तथा उपभोक्तावादी

सस्कृति की विकृतियो का दोषी माना है किन्तु आस्था की प्रखरता का निदर्शन 'सृजन का रथ नामक रचना म हुआ है जहा वे कहती है–

अभी निराश मत हो मेरे मन
सब कुछ अपना लुटा नहीं है
मजिल दूर भले हो लेकिन
सर्जन का रथ रुका नही है



झझावतो के प्रबल वेग से
निष्ठाओ की लौ बुझी नहीं है
अभी भोर है दस्तक देती
अधियारो ने छला नहीं है। (पृ ४०)

इस सग्रह की अतिम रचना 'इन्द्रधनुष के पार म कवियत्री ने मातृत्व को महिमा मडित करते हुए माँ की ममतामयी प्ररणा का सृजन का सुख माना है। तभी तो वे कहती है–

'कहा था तुम्हीं ने
सृजन का सुख सब से बडा सुख है
इससे जुडे रहना ही तुम्हारी नियति है
पूरा करना पडेगा तुम्हारी अपेक्षाओ को



और यही सच्ची श्रद्धाजलि होगी तुम्हारे प्रति मेरी। (पृ ८४)

समग्रत 'इन्द्रधनुष के पार नामक सग्रह की कविताए समुन्नत भावबोध से अनुरजित निश्छल भावाभिव्यक्तिया है। उनमे निरूपित विचार दर्शन किसी विचारधारा विशेष का अनुचर न होकर सामाजिक जीवन तथा चतुर्दिक परिवेश से अनुस्यूत अनुभवो का जीवन दर्शन है जिसमे मानवीय उच्चादर्शो की प्रतिष्ठा का सकल्प भारतीय सस्कृति की मूल मान्यताओ की अभिस्वीकृति का आग्रह एव गहन सवेदनाओ की सृजन ऊर्जा सदीप्त है। प्राय सभी कविताओ मे अभिव्यक्ति की सहजता इतनी प्रबल है कि शिल्पपक्ष गौण हो गया है। सुबोध–सरल भाषा सुगम शैली और सुपरिचित उपमानो के प्रयोग ने इन कविताआ को अत्यन्त सप्रेषणीय बनाया है। कुछ उपमान–प्रयोग सराहनीय बन पडे हैं। जैसे–

'पीडाओं के नागफनी डँस कर
मन को दशित करते है। (पृ ४६)

अथवा

'खुद डूब कर अधेरा म
रोशनी के सौदागरो से साठगाठ कर आए। (पृ ५६)

शीलाजी की कविताओ मे शिल्प सरकार की महती आवश्यकता है। आशा करनी चाहिए कि उनके आगामी सकलनो मे शैल्पिक प्रतिमानो की भास्वरता भी लक्षित होगी।

निष्कर्षत शीला जी का यह सग्रह स्वागत योग्य है क्योकि इसकी रचनाओ की सिद्धि और उपलब्धि वह सृजनधर्मी आस्था है जो मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने का सदेश प्रसारित कर सास्कृतिक धराहर की रक्षा के लिए कृत सकल्प है उनकी यह मगलाकाक्षा सर्वथा उचित है कि–

'इन सर्द होती सवेदनाओ के माहौल मे
देवत्व की बात ही छोडिए
मनुष्य मनुष्य रह सके यही बहुत है। (पृ ६७)

गणतत्र दिवस २६ जनवरी १६६८
सरला सदन जेलवेल
बीकानेर

डॉ देवीप्रसाद गुप्त
पूर्व प्रिसीपल राजकीय डूगर कॉलेज
बीकानेर

आत्मकथ्य

अपनी काव्य यात्रा का द्वितीय पुष्प माँ वीणापाणि के चरणो म समर्पित करते हुये सुविज्ञ पाठको के समक्ष इसे पस्तुत कर रही हूँ। मै अपने प्रयास मे तथा भावाभिव्यक्ति मे कितनी सफलीभूत हुई हूँ इसका निर्णय सुधि पाठको पर छोडती हूँ।

आज से एक दशक पूर्व अनुभूति के स्वर काव्य सग्रह प्रथम प्रयास के रुप मे आपके समक्ष प्रस्तुत किया गया था जिसमे मातृगृह की स्मृतिया नारी क्रन्दन पर्यावरण सजगता तथा कोमल अनुभूतियो को शब्दो के माध्यम स उकेरा गया था आर मुझ आत्म सतुष्टि ह कि मरा प्रयास पाठका द्वारा सराहनीय एव प्रसशनीय रहा। जन–जन तक मेरी रचनाये पहुँच सकी इसके लिये माध्यम चाहे जो भी बना हो पर इसे मै मगलमय विभु का आशीर्वाद मानती हूँ।

'इन्द्रधनुष के पार' काव्य सग्रह म मरा मानस यथाथ के कठार धरातल पर विचरण करता रहा है। अपने जीवन मे मैंने इस सत्य से साक्षात्कार किया कि शैशवकाल से जीवन के अतिम क्षण तक मनुष्य इन्द्रधनुषी स्वप्नो एव कल्पनाओ के ताने–बाने बुनता है यह उसकी सहज स्वाभाविक वृति रही है लेकिन जब वही स्वप्न और कल्पनाये यथार्थ की उबड–खाबड प्राचीरो से टकराती है तो समस्त इन्द्रधनुषी कल्पनाये चूर–चूर हो जाती है।

शैशव अवस्था से किशोरावस्था तक प्रत्येक के मानस पटल पर इन्द्रधनुषी कल्पनाओ का अनवरत सृजन होता रहता है किशोरावस्था के आते–आते यही कल्पनाये महत्वाकाक्षा के धरातल पर अवतरित होकर उन्हे साकार करने के लिये सकल्पित हो उठती है। इच्छाये विचारधाराये और विश्वास की पकड सुदृढ होने के पूर्व ही झझावतो के थपेडो से इन्द्रधनुषी सतरगी रग निस्तेज और निष्प्राण हो उठते है शायद उनके जीवन की यही नियति है। शारीरिक विकलागता अपगता मानसिक विक्षिप्तता उनके जीवन के मधुर स्वप्नो को साकार होने मे सदैव बाधक रही है। उनके वैवाहिक

जीवन की सुखमय कल्पनाओ को दहेज के दावानल म झाक दिया जाता है कितनी ही कोमल कलिकाओ को जीवित जलने क लिय विवश किया जाता है।

माता–पिता जीवन पर्यन्त सघर्ष करते हुये कर्तव्य की बलिवेदी पर स्वय को आहूत करते हुये बच्चो से अपेक्षाये करते है कि वे उनके स्वप्ना एव कल्पनाओ को साकार रुप प्रदान करेगे लेकिन वार्धक्य अवस्था म उन्हे केवल घृणा एव प्रताडना मिलती है क्योकि उन्हे व्यर्थ की वस्तुओ के समान समझा जाता है।

इस पावन भारत भूमि पर जन्म लेकर हम यह अपेक्षा करते है कि हमारा देश सफल स्वस्थ लोकतत्र का सजग प्रहरी हो एव सुख सम्पन्नता के हिडोले मे झूले पर स्वार्थलिप्सा पद लोलुपता के चक्र मे लिप्त होकर सम्पूर्ण देश को भ्रष्टाचार के दावानल मे झोक दिया जाता है जिसका अनहद नाद करती यह पक्तिया है–

राजनीति के गलियारो मे सत्ता की शतरज बिछी है
किसकी शह और किसकी मात बाजी किसके हाथ लगी है

अनादिकाल से प्रकृति हमारी परम आत्मीय रही है। हमारी इन्द्रधनुषी कल्पनाये हैं कि धरती का यह अनुपम सौन्दर्य स्थायी रहे वृक्षो की हरियाली बनी रहे पुष्प सौरभ विकीर्ण करते रहे नदिया शुद्ध जल से परिपूरित हो प्रवाहित होती रहे पर आज जगल कट रहे है नदिया प्रदूषित हो रही है प्रकृति से पलायन के कारण सवेदनहीनता की स्थिति हो रही है–

हम प्रकृति से दूर होते जा रहे है
इसीलिय सवदनहीन होते जा रहे है।

आज सशय के सर्पो ने हमारी सवेदनाओ को सर्द कर दिया है। भौतिकतावादी मूल्यो की होड मे तथा उपभोक्तावादी सस्कृति की ओर बढते रुझान के कारण इन्द्रधनुषी रगो मे चिटकाव आ गया है–

घर के खाली स्थान को भरते रहते है
निरर्थक यान्त्रिक वस्तुओ से
पर मन का खालीपन कभी नहीं भरता।

जिन आत्मीय जनो के साथ हमारा सहज जुडाव रहा है जिनके स्नेहिल वटवृक्ष की छाया मे यह जीवन पल्लवित होता रहा है वे जब

महाप्रयाण करके जीवन को अभावग्रस्त करते चले जाते है तो मानस मे रिक्तता का अहसास होता हे उस समय ऐसा प्रतीत होता हे कि हमारे इन्द्रधनुषी स्वप्न एव कल्पनाये ताश के पत्तो की तरह ढह गई या अग्नि मे भस्मीभूत हो गई उनके अभाव की सम्पूर्ति करना निश्चय ही दुष्कर कार्य है–

यह हृदय न खण्डित हो जाये
टूटन न बन जाय खालीपन
इसीलिये कागज पर शब्दो से
श्रम करना ही पडता है।

मेरा यह सग्रह उन महान आत्माओ को समर्पित है जिन्होने ज्ञात और अज्ञात रुप मे मुझे सदा प्रेरित किया है।

मेरी इस काव्य यात्रा मे कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी रहे है जिनके प्रति मै श्रद्धा व्यक्त किये बिना नहीं रह सकती। स्नेहमयी मातृश्री जो इन्द्रधनुष के पार अनन्त लोक मे विराजित है उनका आशीर्वाद सर्वदा मुझे सर्जन की ओर प्रेरित करता रहेगा।

विश्व विख्यात इतिहासविद् पिताश्री डा देवसहाय त्रिवेद जो इस असार ससार को छोडकर देवलोक हो चुके है उनका आशीर्वाद सदा मुझे सम्बल प्रदान करता रहेगा।

श्रद्धेय डा देवीप्रसाद गुप्त पूर्व प्रिन्सीपल रा स्नातकोत्तर डूगर महाविद्यालय बीकानेर ने मेरी रचनाओ से स्वय की भावधारा को जोडकर नूतन आयाम प्रदान कर इस सग्रह की रचनाओ के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वैशिष्ट्य को पहचान कर भूमिका लिख कर मुझे निरतर रचनाधर्मिता की ओर प्रेरित करने का सुदृढ सम्बल प्रदान किया है वह स्तुत्य है। मैं हृदय के गहन तल से उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मेरे जीवनसाथी डा सिद्धराज मेरी प्रेरणा के अदम्य स्त्रोत है मेरी रचनाओ को पाण्डुलिपि का आकार देकर राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर तक पहुँचाने का सम्पूर्ण श्रेय उन्ही को है। इस पुस्तक के प्रकाशन के दायित्व का निर्वहन उन्होने जिस निष्ठा श्रम एव समर्पित भाव से किया है उसके प्रति आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता होगी।

श्री चन्दन प्रकाशन गगाशहर (बीकानेर) के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करना चाहूँगी क्योकि मेरी काव्य यात्रा का श्री गणेश प्रकाशक

के अथक प्रयास से फलीभूत होता रहा है। इससे पूर्व मेरी दो साहित्यिक कृतियाँ अनुभूति के स्वर (काव्य संग्रह १६८६) और माटी की गंध (कहानी संग्रह १६६२) का सफल प्रकाशन कर मुझे साहित्य जगत में एक सार्थक पहचान प्रदान की है। मैं अपने आप को भाग्यशाली मानती हूँ कि मेरी नवीन कृति इन्द्रधनुष के पार काव्य संग्रह के प्रकाशन का दायित्व भी प्रकाशक महोदय ने सहर्ष स्वीकार कर पुस्तकीय आकार देकर मुझे नैतिक सम्बल प्रदान किया है। मुझे यह कहते हुये गर्व होता है कि भविष्य में भी मुझे श्री चन्दन प्रकाशन का आत्मीय सहयोग अनवरत मिलता रहेगा।

मैं राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ, जिन्होने इस काव्य संग्रह की पाण्डुलिपि को पाण्डुलिपि प्रकाशन सहयोग के रुप में छः हजार रुपये का आर्थिक सहयोग देकर प्रकाशित करने में अभूतपूर्व योगदान दिया है। अकादमी की पाण्डुलिपि प्रकाशन सहयोग योजना से नवोदित साहित्यकारों को निश्चय ही नवसृजन की प्रेरणा मिलती रहेगी साथ ही पाण्डुलिपि पर किया गया मूल्यांकन प्रकाशक का पुस्तकीय आकार देने में सम्बल प्रदान करता रहेगा।

शीला व्यास

अनुक्रमणिका

उसके हाथ मे बन्दूके तो नहीं हैं
क्योकि उसके लिये लाइसस लेना पडता है
और वह हिसा की प्रतीक भी है।
पर उसके पास शिव की
वह तीसरी शक्ति है
जा बदल डालती है
सम्पूर्ण व्यवस्था को।
ओर व्यवस्था के इस उतार–चढाव मे
सारी भूमिका उसके हाथ
अदा करते हैं।

आम आदमी

धूप मे खडे

छॉह का इन्तजार करते।

भीड से घिरे

कतार मे लगे।

रुमाल से पसीने पोछते।

अपनी–अपनी समस्याओ मे उलझे

मेज पर मारकर मुटिठया

वर्तमान पर बहस करते

दफ्तरो मे दूकानो पर

बस–स्टैन्ड पर

धूप सेकते

बढती महगाई पर चिन्ता करते
हम जैसे आप जैसे
आम आदमी ही तो हैं।

सशय के सर्प

रोशनी के कदम डगमगाने लगे
अधियारे दबे पॉव आने लगे।
कट गये आस्थाओ के सुन्दर सघन वन
सशयो के सर्प कुलबुलाने लगे।
न वो घर ही रहा
न वो रिश्ते रहे
कल जो अपने थे
वे सब बेगाने लगे
सूख कर झर गये निष्ठा के सुमन
फॉस चुभने लगी शूल गडने लगे।
गगा–जमुना–सी नदिया बहाता यह देश

आज सड़कों पर लाश बिछाने लगे।
यह गौतम की धरती यह गाँधी का घर
आज मन्दिर और मस्जिद टकराने लगे।

पहचान

आकाश की ऊँचाइयो मे उड़ते।
इन्द्रधनुषी स्वप्नो के ताने-बाने बुनते
मजिल थी सामने
फासला था कुछ ही पल का।
स्वागत मे हिलत थे हाथ
जिनमे लिपटी थी पुष्पमालाएँ।
किसे था पता
काल के क्रूर झोके से
सब कुछ हो जायेगा राख
स्वागत मे हिलते हाथो को
अत्येष्टि करनी पड़ेगी
अपने ही आत्मीयो की

गले मे पडने वाले हार
उनके शवो पर डाले जायेगे
श्रद्धाजलि के रूप मे
और स्थिति उस समय
और भी पीडादायक हो उठी
जब लगा कि
चेहरो ने अपनी पहचान ही खो दी।

तस्वीर

फ्रेम मे लगी तस्वीर मुस्कुराती है।
तस्वीर की ऑखे मुझे ही देखती रहती हैं।
तस्वीर मे चेहरा है
यौवनमयी नारी का।
पर उसने खो दिया है
अपने अस्तित्व को।
स्वय को टुकडा म बॉट दिया ह।
वह अनेक सम्बोधनो से घिरी हुई है।
समस्याओ के भवरजाल मे उलझी हुई है।
उसका चेहरा जर्द हो गया है
जगह–जगह से उसमे चिटखाव आ गया है।
वह उस भग्न इमारत की तरह है

जिसके अवशेष बताते हैं कि
भवन कभी सुन्दर था अति सुन्दर।
जिन्दगी उसके लिए बोझ हो गई है।
कभी वह यह सोचती है कि
वह जीवित भी है अथवा नही ?
अगर है तो किसके लिये ?
फिर वह स्वय अपने ही
अगो पर हाथ फेरती है।
और अपने जीवित रहने का एहसास
खुद–ब–खुद करती है।
वह रोती है व्यथित होती है
गिले–शिकवे भी करती है
पर तस्वीर मे वह यौवनमयी
अब भी मुस्कुरा रही है
और सदा मुस्कुराती रहेगी।

प्रतीक्षा

सोचा था जिस रास्ते से गुजरेगे
हर खिडकी खुली मिलेगी
दरवाजे पर उत्सुक निगाहे
प्रतीक्षारत होगी।
पर खिडकियो के पट बन्द मिले
दरवाजो पर ताले लटके हुये थे
शायद वे कहीं और चले गये थे
इस शहर को छोडकर
क्योंकि सुना था कि
यहाँ का आदमी
इन्सान से हैवान बन गया था।

पहल

राजनीति के गलियारो मे
सत्ता की शतरज बिछी है।
किसकी शह और किसकी मात
बाजी किसके हाथ लगी है ?
झूठी सवेदनाये
घड़ियाली आसू
भडकीले भाषण
थोथे आश्वासन
गरीबी हम मिटा देगे
पिछडो को आगे लायेगे
बो दिया मडल का विषवृक्ष
शिक्षण—कार्य हुआ अवरुद्ध

निकल पडे सडको पर छात्र
जनपथ पर होते आत्मदाह
फिर आया मन्दिर–मस्जिद का रगडा
भाई–भाई फिर भी झगडा।
पूछ रही है जनता उनसे
क्यू सरयू का पानी लाल हुआ ?
दिल्ली क्यो जलती है मेरी ?
क्यो ताजनगर मे भडकी हिसा ?
पूरब हो या पश्चिम हो
उत्तर हो या दक्षिण हो
हर जगह पर दगे भडके हैं।
दलबदलुओ की चली लहर है
सत्ता–सुख हथियाने को
गणतन्त्र के पावन पर्व पर
जनता–जनार्दन सुने आज
सत्ता–सुख एक महान उपलब्धि है
गुण [illegible] गुरु है
[illegible] तो सारे मूल्य दरकिनार

कर दिये जाते हैं
और शपथ-समारोह कराये जाते हैं
पर मेरे भाई
सबसे बड़ा सुख है
जनता का सुख
जनतत्र की रक्षा
महगाई का विघटन
देश की शाति का
राष्ट्र की अस्मिता का
इसी पर सोचने की
पहल करिये।

विस्तार

सबकी आकाक्षाओ को
विस्तार नही मिलता
सूरज की उजली धूप
सुख का अहसास नही मिलता
यू तो इस धरती पर
कितने आते और जाते हैं
पर सबको अमरत्व का
वरदान नहीं मिलता।
सबका जीवन फूलो की सेज नहीं होता
कुछ तो विपदा को गले लगाकर ही पैदा होते हैं
सबको सीधी राह नहीं मिलती है
कुछ तो धुधली राहो मे ही भटक जाते हैं।

रीतापन

सच तो यह है कि
हमारे सोच म फर्क आ गया है
फर्क आ गया है
हमारे नजरिये मे
घर के खाली स्थान को भरते रहते हैं
निरर्थक निर्जीव यान्त्रिक वस्तुओ से
पर मन का खालीपन
कभी नहीं भरता
उसके लिये चाहिये
मानसिक भोजन।
हर उस खुराक को लेने के लिये
सकल्पित भी तो नहीं हैं

क्योंकि हम जी रहे हैं
इक्कीसवीं सदी के सपनो मे
बाते करते हैं
आदमी की अहम् भूमिका पर
नूतन वैज्ञानिक आविष्कारो पर
उपभोक्ता सस्कृति मे जी रहे हैं हम सब
इसीलिये मन सदा रीता ही रहता है
नही भरता है उसका रीतापन।

मनुहार

क्या सूरज का कोई जाति–धरम होता है ?

क्या चन्दा की ज्योति को

कोई बॉध सका सीमाओ मे ?

दीपक के लिये भी क्या

सीमाये होती हैं ?

वह तो सबके आगन

जलता है निर्लिप्त भाव मे

गगाजल सबकी प्यास

बुझाता है

पुष्प सौरभ बिखेर कर

जन–मन को हर्षित करते हैं

एक इन्सान ही ऐसा है जग मे

जिसने अपने को बॉटा हे
धर्म–जाति की दीवारो मे।
मन्दिर–मस्जिद की सीमाआ म बॅधकर
जो राम–रहीम को लडवाता है
वह भूल बैठता है
इस धरती का धानी आचल
सबकी मनुहारे करता है
फसलो का वरदान लिये
अन्न–धन से सबको भरता है
हम सबने इस पर जन्म लिया
इस पर ही हमको रहना है
जाति–वर्ण के भेद भुलाकर
एक सूत्र मे बॅधना है।

शाश्वत शब्द

कहते हैं शब्दों में बड़ी शक्ति होती है
शब्द ही शाश्वत हैं
शब्द ही चिरतन हैं
शब्दों से ही इतिहास लिखा जाता है
शब्दों से ही साहित्य रचा जाता है।
शब्द तो यथा रूप ही रहते हैं
पर सन्दर्भों में उनके
अर्थ बदल जाते हैं।
कितना पावन शब्द स्वतत्रता
जो प्राणो मे नव–उन्मेष भरे
जिसे प्राप्त करने हेतु
वीरो ने अर्पण प्राण किये

माताओ ने अपने लाल दिये
बहनो ने भाई वार दिये
सुहागिनो के सिन्दूर लुटे
तब भारत माँ के बन्ध खुले
पर आज वही शब्द
स्वच्छन्दता का पर्याय बना
उन्मुक्त उच्छृंखल जीवन ही
सबका अपना अधिकार बना।
त्याग तपस्या और बलिदान
जिनको जीवन-लक्ष्य बनाकर
गौतम नानक तेगबहादुर ने
भारत को सिरमोर बनाया
पर आज वही शब्द
अपनी अस्मिता खो बैठे हैं
परिभाषित हुये हैं
नवीन शब्द
आतंकवाद और अलगाववाद

जो संगीनों के साये में
लाशें घिसते जाते हैं।
इसीलिये तो कहते हैं
शब्दों में बड़ी शक्ति होती है
पर सन्दर्भों में
उनके अर्थ बदल जाते हैं।

नयी पौध

ऐसा क्यो होता है ?
जब भी नयी पौध लगाने का
प्रयास करते हैं हम
अन्दर ही अन्दर
दीमक उन्हे चाट कर
खोखला कर देती है
जिस तरह सम्बन्धो की तरलता को
शुष्कता की सिकताये
सुखा डालती हैं
आत्मीयता के सेतु मे
स्वार्थों की मिलीभगत
दरारें डाल देती है

एकता और अखण्डता पर
धर्मान्धता कुठाराघात करती है
मनुष्य अपने–अपने खेमा मे
बॅट जाते हैं
रिश्ते अपनी पहचान
खो बैठते हैं
पौधो की लगाने का सारा उपक्रम
निष्फल हो जाता है
और धरा रहती है इस आशा मे
फिर कोई आयेगा
स्नेह से थपकिया देगा
और रोपेगा एक नई पौध को
फिर कोई मसीहा आयेगा
एकता और प्रेम का सवाहक बनकर
मानवता के उपवन मे
शाति की नयी पौध रोपेगा।

दो हाथ

प्रार्थना की मुद्रा मे
कुछ श्वासो की याचना करते
अजलिबद्ध वे दो हाथ
अपने मुँह का निवाला निकाल कर
पेट काट कर
गृहस्थी का बोझ उठाते
दिनभर दफ्तर मे कलम घिसते
वे दो हाथ
नयनो के शतदल पर ठहरे
अश्रुतुहिन को रोक
विदा मे हिलते
आगत का स्वागत करते

आशीर्वादो की झडी लगाते
मस्तक पर फिरते
वे दो हाथ
दु खो की धूप से बचाते
सुखा की वर्षा करते
अभयदान–से देते
वे दो हाथ
आज उपेक्षित हो गये हैं
वे दो हाथ
उनसे कोई काम
नहीं लिया जाता है
और न किसी काम के लिये
उन्हे कहा जाता है
कतराते हैं स्पर्श से
उन्हे डर है
कहीं चीजे टूट न जाये
स्वप्न बिखर न जाये

क्योकि किसी

काम के नहीं रहे हैं

वे दो हाथ।

खरोच

नींद मे भी बच्चे मुस्कुराते हैं।
सतरगी सपनो के हिडोले मे झूलते हैं।
जैसे–जैसे वे बडे होते हैं।
उनके डैने विस्तृत हो जाते हैं।
सपनो के इन्द्रधनुष
उनके जीवन को
विविध रगो से भर देते हैं।
पर यही सपने टूटकर
चकनाचूर हो जाते हैं
इन्द्रधनुष के रग बिखर जाते हैं।
समाज की विसगतियो से
सम्बन्धो की शुष्कता से

भौतिकतावादी मूल्या की दौड म
उपभोक्ता सस्कृति की तलाश मे
पारस्परिक कटुता मे
मानवीय गुणो के अवशोषण मे
यथार्थ की पथरीली चटटानो से टकराकर
सारे स्वप्न ढह जाते हैं
बालुका–स्तूप की तरह।
उनके ढहने पर कोई
आवाज नही होती
पर हृदय पर खरोच–सी लगती है
जो किसी आईने मे दिखाई नही पडती
पर अन्तर्मन को कहीं गहरे तक
झकझोर डालती है।

शिनाख्त

फूल सजे हैं गुलदानो मे
पर उनको छूते डर लगता है
सब कुछ ऐसा हदसाया है
अपनो से भी डर लगता है।
राहे इतनी धुँधली हैं
मील के पत्थर गायब हैं।
पगडंडी पर चलना भी अब
कोसो लम्बा लगता है।
विस्फोटो के क्रूर धमाको से
चिन्दी–चिन्दी होते उन अगो की
आज कौन शिनाख्त करे ?
कौन है अपना कौन पराया

इसकी क्या पहचान करे?
शब्द निशब्द हुये हैं
ऑखे भी अब पथराई हैं।
दीवारो के होते हैं कान
कुछ कहते भी डर लगता है।

उसकी माँ

स्थिति सामान्य हो गयी है
पहले की तरह
लोग घरो से निकलने लगे हैं।
कधो पर बस्तो का भारी बोझ लिये
बच्चे फिर स्कूल जाने लगे हैं।
स्कूल–बस की प्रतीक्षा मे लाइनो मे खडे होने लगे हैं।
पर उस पक्ति मे वह अब कभी दिखाई नहीं देगा
दरवाजे पर बाट जोहती होगी उसकी माँ
पर वह अब कभी नहीं लौटेगा।
कक्षा मे पूछे गये प्रश्नो के उत्तर मे
वह अब कभी हाथ खडे नहीं करेगा।
क्योकि उसका नाम

रजिस्टर से काट दिया गया है।
लाल स्याही से।
वह जिसने किताबो मे पढा था
कि सभी धर्म भाईचारे का सदेश देते हैं
कुछ धर्मान्धो के द्वारा कुचला गया।
वह जिसने पढा था
अहिसा सबसे बडा धर्म है
वह हिसक भीड की दरिन्दगी का शिकार होगया।
क्या कसूर था उसका?
काश उस दिन उसकी पेंसिल न खोई होती
और वह जिद करके घर से बाहर
न निकल पडता।
पर यह हादसा केवल उसके साथ ही तो नहीं हुआ
न जाने कितनी मॉओ क बटे
घर नहीं लौटे होगे।
वह यह भी सोचती है
जो भूल बैठते हैं ममता को

सर्जन का रथ

अभी निराश मत हो मन मेरे
सब कुछ अपना लुटा नहीं है
मंजिल दूर भले हो लेकिन
सर्जन का रथ रुका नही है।
अभी तिमिर की काली चादर ने
उजलेपन को ढका नहीं है
झझावतो के प्रबल वेग से
निष्ठाओ की लौ बुझी नहीं हे
अभी भोर है दस्तक देती
अंधियारे ने छला नहीं है।
जब तक भारत माँ का शोणित
तप्त धमनियो मे बहता है

जब तक हर बच्चा–बच्चा
अपने को भारतवासी कहता है।
देशप्रेम की ज्वाला तो सबके दिल मे
जलती है
चिनगारी राख भले हो जाये
फिर भी चिनगारी रहती है
अभी राम की मर्यादाये
सीता का सत मरा नहीं है
अभी शेष है पर दु खकातरता
मानवता अब भी मरी नहीं है।

पहली बार

वह बालिका अपगता का
भार ढो रही है।
वह अपग है
जमीन पर उसके पैर नही पडते।
पर जब तक माँ थी
वह भूल बैठती थी कि
वह अपग है।
क्याकि उसे माँ की गोद
लगती थी कोमल धरती की तरह
जिस पर वह अपने पेर जमाकर
खडी हो सकती थी।
पर आज जब माँ नहीं रही

तो उसके पैरा तले धरती

खिसक गई है

आज उसे पहली बार लगा कि

वह वास्तव मे अपग है।

सूना बरामदा

ज सूना पडा है घर का बरामदा
आि कभी घर के अन्दर नहीं रहे
तुम जहा भी रहे
तुमने चुना हमेशा ही बरामदा।
तुम्हे वह महानगर का फ्लैट हो
चा तुम्हारा अपना आवास हो।
या स्थल मे स्थित
मर हारी जाया का सदन हो
तुम तुमने चुना सदा ही बरामदा।
परर तुम आगे से आगे ही चले गये।
औ तिशेष है
स्मृहारी वो हत्थे वाली कुर्सी
तुम

जिस पर बैठ कर पढ़ी थी तुमने
रामायण और भागवत की कथाये।
वेद की ऋचाये।
और सृजन किया था
इतिहास के नये मूल्यो का।

भोर सवेरे हम जागे

आघाता की ऑधी आकर
जीवन की समतल सरिता मे
व्याघात उपस्थित करती हे।
पीडाओ के नागफणी डँसकर
मन को दशित करते हैं।
सब ओर अधेरा छा जाता है
जब अपने कुछ खो जाते है
कुछ मौन–मूक रह जाते हैं।
पर तब भी प्रस्तर बनकर
होठो को सिलकर
सब कुछ सहना पडता है।
यह जीवन बोझ न बन जाये

यह हृदय न खण्डित हो जाये
टूटन न बन जाये खालीपन
इसीलिये कागज
पर शब्दो से श्रम
करना ही पडता है।
भोर सवेरे जाग–जाग कर
व्याकुल मन को धेर्य
बधाना ही पडता है।

पहाड की नारी

पहाड की सस्कृति का
जीवन्त प्रतीक है नारी।
वह पथरीली चटटानो पर
अपने श्रम–सीकर से
फसले उगाती हैं
पर्वतो की मनोरम वादिया
गूजती है उसके सुमधुर गीतो से।
वृक्ष हमारे देव हैं
वृक्ष हमारे जीवन हैं।
प्राकृतिक सपदा को सुरक्षित रखने की
सौगन्ध उठाई है उन नारियो ने।
जनचेतना और देशभक्ति के गीत

आज भी गूञ्ज है इन ...

भूल नहीं सके है

साक्षात गौरी का ...

उस गौरा का

जिसने चिपको ...

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

झेला है उस नारी न

अनेक त्रासदिया का

कभी घर की परिवार ...

विखडित हाते देख है

ेहान

भावी पीढी उन्हे कभी क्षमा नहीं कर पायेगी।
शायद वे गोलिया बरसा कर
बन्द करना चाहते हैं उनके उभरते स्वरो को।
पर ऐसा कभी नहीं हो सकता।
लोगो के अन्तर्द्वन्द मे जो
मानसिक भूचाल उठ रहा है
उसे कोई शक्ति रोक नही सकती।
जितनी ही वह दबाई जायेगी
उतनी ही मुखरित होगी
विरोध का स्वर भी उतना ही मुखर होगा।
पहाड की पथरीली चटटानो मे
उनके स्वर गूजते रहेगे।

नव विहान

धरती पर धुंध–सी छाई है
अम्बर भी कुछ धुंधलाया है।
सब ओर अंधेरा छाया है
इस अंधियारे को दूर भगाने
साक्षरता का नव विहान आया है।
जत्थे पर जत्थे निकल पड़े हैं
लेकर साक्षरता की मशाल
गॉव–गॉव और डगर–डगर मे
फैला है नव उल्लास
जो बैठे हैं घुप्प अंधेरे मे
उनके मानस को छूना होगा

हाथो मे पकडेगे जब वे कलमे
तभी देश मे गूजेगा
नव विहान का गीत।

बदलाव

आज वो घर मेरे लिये घर नही रहा
क्योकि उसे जोडने वाली कडी टूट चुकी है।
एक सेतु, जो बना हुआ था हम सबके बीच
वह ढह गया है।
वह नदी भी अब पहले जैसी नही रही
जिसकी लहरो के उतार–चढाव
हम किनारे बैठ कर गिना करते थे।
प्रदूषित कर दिया है नदी को
अवशिष्ट पदार्थों ने
वे अमराइया भी अब नहीं रही हैं
पहले ही तरह
जहॉ हम लुका–छिपी का खेल खेलते थे।

उन्हे काट कर भवनो को
निर्मित कर दिया गया है।
यह मेरा अरुण मधुमय देश भी
नही रहा है पहले की तरह
जहॉ अस्मिता की रक्षा क लिये
लोग अपने प्राण अर्पण कर दिया करते थे।
अब तो सब कुछ सोदेबाजी
मे तबदील हो गया है।

माटी का कर्ज

बालू मे धसे पावो को
हम आकार न दे पाये
यह सच है कि हम तेरे
स्वप्नो को साकार न कर पाये।
यह सोचकर उन्होने कर दिया था
सर्वस्व को समर्पित
शायद हमारी शहादत से
यह देश सवर जाये।
कभी जलती थी
हर चौराहे पर
विदेशी वस्त्रो की होली
आज घर–घर मे

अपने स्वर मे स्वर मिलाकर भी
नवचेतना के सवाहक बन
भक्तिमय सरस गीतो को
हम आज भी भूल न पाये।
अब भी समय है
सस्कृति को विनष्ट करने की
साजिशो के चक्रव्यूह को
अभिमन्यु बन यदि हम
भेद न पाये
तो निरतर सालता रहेगा
मन ही मन यह अपराध–बोध
कि हम अपनी मिटटी के कर्ज से
ऋणमुक्त न हो पाये।

जिनकी माँ सदा के लिये
गहरी नीद मे सो गई।
सिसकी भर कर रोते ये बच्चे
एक या दो नहीं अनगिनत है
कभी घर मे घुसकर
इनकी माँ पर किया है प्रहार
और दूधमुँहे बच्चे चिपके ही
रह गये माँ की छातियो से।
कहीं रक्षक ही भक्षक बन बैठे
जिनको बैठाकर लाये थे डोली मे
उसको ही जीवित झोक दिया अग्निकुड मे।
वो फिर सेहरे बाँधेगे
उनके द्वार पर फिर से बजेगी शहनाइया
उनका जीवन–उपवन फिर से
महक उठेगा नयी सुवास से।
सब कुछ वैसा ही होगा
जैसा पहले था।

पर नही मिल सकेगी
उन शिशुओ को उनकी मातायें
वो सदा के लिये वचित रहेगे
माँ की ममताभरी लोरिया से।
क्या कर सके है हम और आप
और नारी–अधिकारो की पुरजोर माग करते
ये नारी–मुक्ति सगठन ?
क्या हम उन बच्चो को उनकी
माँ वापस दे सकेगे ?
उनकी सूनी उदास आँखे
हर उस शिशु को देखेगी ललचाई नजरो से
जिसके सिर पर माँ के ममताभरे हाथ हैं।

आघात

तेरा–मेरा रक्त एक है।
हम दोनो का दर्द एक है।
कौन किसे समझायेगा ?
वक्त स्वय ही मरहम बनकर
घाव हमारे भर जायेगा।
हम दोनो का एक है आगन
आगन मे सबके साझे हैं।
एक छत के नीचे रहकर
सुख–दु ख मिलकर के बाँटे हैं।
आघातो से छलनी मानस पर
चन्दन कौन लगायेगा ?
कौन किसे समझायेगा ?

वक्त स्वय ही मरहम बनकर
घाव हमारे भर जायेगा।
एक उदर से हम–तुम जन्मे
दूध पिया है एक जननी का।
एक तरु के नीचे खेले
कभी रूठते कभी झगडते
चले गये जो हमे छोडकर
पूरी कौन कमी कर पायेगा ?
कौन किसे समझायेगा ?

त्रासदी

कुछ तो नदी की उफनती बाढ को
देखते हैं तमाशाई बन के।
कुछ ऊँचाइयो पर खडे होकर
जायजा लेते हैं स्थितियो का।
पर पूछे कोई उनके अन्तर्मन से
जिन्होने झेली है बाढ की त्रासदी
किस तरह बह जाते हैं एक पल मे
सजे–सवरे आशियाने।
तिनके–तिनके जोड कर
बनाया था जिस घर को
जिसमे बजी थी थालिया
गूजी थी शहनाइया

खिलखिलाते शिशुओ की किलकारिया
चौतरे पर बैठे अनुभवो का ससार लिये
रोज सध्या को जुडती थी मण्डलिया
दूधिया रोशनी मे नहाया शहर
वाहनो के शोर से गूजता शहर
हँसता–खेलता हलचलो मे डूबा शहर
बाढ की विनाश–लीला ने
लील लिया है
समूचे शहर को
सब कुछ शान्त हो गया है
मरघट की तरह।
कीचड ही कीचड है सब ओर।
घर लौट कर आये हुए परिवारजन
तलाश करते हैं अपनी चीजो की।
नन्ही मुनिया खोजती है अपनी गुडिया को
सिर कही मिलता है
धड कहीं मिलता है

चुनरी तार–तार हुई गीली मिटटी म सनी मिलती है।

पप्पू खोजता है अपनी पेसिल और किताबे।

अधछिली पेसिल कीचड मे दबी मिलती है।

किताबो के पन्ने बिखरे हैं इधर–उधर।

जिन पर अक्षर साफ हुये मिलते हैं।

सर्द सवेदनाये

वेदवाणी है
जहाँ नारी की पूजा होती है
वहाँ देवता निवास करते हैं।
पर आज हमारे इस देश मे
पूजा की तो बात ही छोडिये
नारी को तदूर की आग मे
जलाया जा रहा है।
सडक पर पडी क्षत-विक्षत नारी को
उठाने कोई हाथ आगे नहीं बढता है।
सब चले जाते हैं पास से
मुँह पर रूमाल रखकर।
वह महिला विदुषी थी

देश की भावी पीढी का
भविष्य सवारने वाली
और उसी का सब कुछ समाप्त हो गया।
काश उसे मिल जाता
थोडा–सा सहानुभूति का स्पर्श
तो वह बच जाती
इस तरह न होता उसके जीवन
का दुखदायी अन्त।
इन सर्द होती सवेदनाओ के माहौल मे
देवत्व की तो बात ही छोडिये
मनुष्य मनुष्य रह सके यही बहुत है
इस आदर्श सस्कृति की धरोहर को सुरक्षित रखने के लिये।

सैकत–शय्या

ऊपर नीला अम्बर है
नीचे सैकत–शय्या है।
इन रेतीले धोरो मे
उसका बचपन खेला है।
दूर–दूर तक फैली बालू
हरियाली का नाम नहीं है
इसी बालुकाराशि से उसने
स्वर्णिम ससार बसाया है।
इन रेतीले धोरो मे उसने
खेली आखमिचौनी है
जब–जब भी विश्रान्त हुआ है
इसकी गोद मे सोया है।

कर्म–मार्ग पर उन्मुख होकर
चला गया था इसे छोडकर
पर इस धरती के कण–कण ने
वापस उसे बुलाया है।
जब भी उसने जाना चाहा
इसने उसकी बॉह गही है
ऑधी ने रास्ता रोका है
टीलो ने उसको जकडा है।
यदि इस धरती से उसको मोह न होता
तो वह लौट नहीं वापस आता
उस दमघोटू परिवेश मे उसका
जीवन रीत भले ही जाता
इसीलिये तो कहती हूँ मैं
इस मरुधरा से प्यार करो
जन्मभूमि जननी से बढकर है
इसका तुम श्रृगार करो।

समष्टि का सुख

उनके चेहरो पर अहम का भाव है
होठो पर विद्रूपभरी मुस्कराहट है।
वे सोचते है शायद वे विजयी हुये हैं
और उत्साह का यह अतिरेक उसकी अभिव्यक्ति है।
पर वे यह भूल बैठ हैं कि
यह उनकी विजय नहीं अपितु पराजय है
जब व्यक्ति अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये
विमुख हो जाता है समष्टि से
तो वह बन बैठता है आत्महन्ता।
आज हर व्यक्ति चाहता है
अपने लिये कोमल एहसास

सुविधाओ का अम्बार
दूसरो को धूप मे तपते देखकर
उसे अनुभूति होती है सुख की
परायो को उत्पीडित करके
उसे अनुभूति होती है आनन्द की।
पर ये लक्षण मनुष्य के तो नहीं हैं
अगर यही पहचान होती मनुष्य की
तो यह धरती दानी दधीचि के
उपकार से उपकृत न होती
राम प्रतिज्ञाओ मे आबद्ध होकर
वन–वन न भटकते।
भरत भ्रातृ–प्रेम का पर्याय बनकर
खडाऊ की आराधना न करते
पन्नाधाय ने न किया होता
अपने लाल का बलिदान।
और हाडी रानी ने अपना शिरोच्छेदन कर

न किया होता चूडावत को प्रेरित
हल्दीघाटी के युद्धक्षेत्र मे
अपना जौहर दिखाते वीर प्रताप
अपने बेटे को भूख से तडपता न देखते
पर आज क्या हो गया है मनुष्य को ?
वह केवल जीता है स्व के लिये
उसके स्वार्थीपन ने बदरग कर दिया है
रिश्तो के रग को
खोखला कर दिया है
आत्मीयता की जडो को
फिर भी वह कहलाता मानव है
कहीं ऐसा न हो आत्मीयता
का स्नेहस्रोत सूख जाये
इसलिये हमे लेना है सकल्प
प्रवाहित करना है अविरल गति से
आत्मीयता की मदाकिनी को

तभी हम सच्चे अर्थों मे कह सकेगे
हम मानव हैं मनु की सन्तान हैं
पार्थ बन सके हम समष्टि के सुख के।

प्रायश्चित

अपने टेढे–मेढे बेडौल अगो पर हाथ फेरती
वह अपाहिज बालिका कितनी विवश है।
चल नही पाती पैरो से
लिख नहीं सकती हाथो से
बस्ते लटका कर स्कूल जाते बच्चो को
देखती है हसरतभरी नजरो से।
मैदान मे डोलती उछलती कूदती अपनी हमउम्र सहेलियो को
देखती है सूनी उदास ऑखो से।
पूछती है अपनी मॉ से
एक ही प्रश्न बार–बार।
मॉ क्या मैं कभी नही जा सकूगी स्कूल

कभी नहीं खेल सकूगी अपनी सखियो के साथ ?
मॉ एक ठडी आह–सी भरती हे
और अश्रुभरी ऑखो से कहती है
मत रो मेरी बच्ची मत रो
उदास मत हो मेरी बच्ची
यह सच है कि मैं अपराधिनी हूँ तेरी
काश मैंने तुझे जन्मते ही
पोलियो की दवा पिलाई होती
तो तुझे यू अपाहिज न होना पडता।
जब भी देखती हूँ, तेरे बेजान अगो को
मेरे अन्तर्मन मे पीडा की लहर–सी दौड जाती है।
मेरी जरा–सी भूल ने तेरे भविष्य पर
प्रश्नचिह–सा लगा दिया है
पर मैं करूगी इसका प्रायश्चित
मैं गॉव–गॉव नगर–नगर घर–घर जाऊगी
सबको यह सन्देश सुनाऊगी
अपने बच्चा को जन्मते ही

पोलियो की दवा जरूर पिलाये
उनके शैशव को नष्ट होने से बचाये
उनके भविष्य को स्वर्णिम बनाये।
जब कोई भी बच्चा पोलियोग्रस्त नहीं होगा
और सम्पूर्ण राष्ट्र पोलियोमुक्त होगा
तभी मैं कर सकूगी अपनी भूल का प्रायश्चित
और मुक्त हो सकूगी अपने अपराधबोध से।

विकास का रथ

आस्था की जजीरो से जकडा
आदर्शों का पथगामी
मानवीय मूल्यो का पोषक
गौरवमय अतीत को सीने से लगाये
निष्ठाओ के सुमनो की माला पिरोये
ज्ञान का सौरभ लुटाता
यह मेरा देश मेरा यह देश
गॉधी की अहिसा
गौतम की करुणा
महावीर का अपरिग्रह
नेहरू का पचशील
भगतसिह का बलिदान

वीरो की यशोगाथा को
समेटे है क्रोड मे
मेरा यह देश यह मेरा देश
तुलसी का मानस
मीरा की वाणी
सूर की भक्ति
लक्ष्मी की शक्ति
पन्ना के त्याग
राणा के शौर्य से
गुजित है कण–कण
मेरा यह देश मेरा यह देश
तेरी अस्मिता पर
सकट के बादल गहराते देखकर
कम्पित हो उठता है अग–प्रत्यग
कहीं ऐसा न हो
इतिहास फिर दुहराया जाये
मानवता का स्नेह–स्रोत

कहीं सूख न जाये
इसीलिये हमे लेना है सकल्प
भारत एक रहे अखण्ड रहे
हम सब वलयित हो स्नेह–सूत्र मे
विकास का रथ गतिमान रहे
त्वरित कदमो से
तभी तो गूजेगी यह वाणी
मेरा देश भारत मेरा देश भारत।

कलिया और बालिकाये

बालिकाये और कलिया
एक दूसरे का पर्याय हैं।
कलिया लगती हैं टहनियो पर
बालिकाये खेलती हैं
घर–आगन मे।
कलियो को जब मिलती है
खाद मिट्टी हवा पानी
तो वे विकसित होकर
रूप धारण करती है फूलो का।
बालिकाओ को भी मिलता है
उपयुक्त परिवेश ममता की खाद
तो वे पल्लवित होती हैं।

कुछ कलिया मुरझा जाती है असमय मे

हवा के क्रूर झोको से धराशायी हो जाती है।

बालिकाये भी असमय मे

हो जाती हैं काल–कवलित

जब उन्हे मिलती नहीं सार–समाल

पिसती रहती हैं वे उपेक्षा की चक्की मे

कलियो को फूल बनने दीजिये।

बालिकाओ को शाला–प्रागण

मे खिलने दीजिये।

इन्द्रधनुष के पार

तुम चली गई हो
इन्द्रधनुषी स्वप्नो के उस पार
जहाँ से कभी कोई
लौट कर नहीं आता।
तुम्हारे जाने के बाद
यह अहसास हुआ है
शब्दो के स्फुल्लिग जो
निकलते थे अन्तर्मन से
उनमे शीतलता आ गई है
बर्फ की सिल्ली की तरह।
जब भी कलम लेकर
उकेरना चाहती हूँ

शब्द बिम्बो को
अश्रुबिन्दु छलक उठते हैं
जो जलसिक्त कर देते हैं कोरे कागज को।
तुम वही थी जिसने मेरी उगली पकडकर
पहली बार मुझे परिचित कराया था
लेखनी के विशाल ससार से।
विस्मृत नहीं कर पाती हूँ
हृदयपटल से उन दृश्यो को
जब तुमने विदा होते समय
भावावेग से जकड लिया था मुझे
दीपक की तरह तिल–तिल कर के जलते हुये
तुम्हारा काल के द्वार तक पहुँचना
मुझे झकझोर जाता है गहराइयो तक।
अकित है इस घर के आगन मे तुम्हारी पदचाप
तुम्हारा रूठना खिलखिलाना
चीजो को उठाकर फेकना
और फिर सदा के लिये मौन हो जाना।

कहा था तुम्हीं ने

सृजन का सुख सबसे बड़ा सुख है

इससे जुड़े रहना ही तुम्हारी नियति है

पूरा करना पड़ेगा मुझे तुम्हारी अपेक्षाओ को।

कागज के कैनवास पर उकेरूगी मैं

नूतन शब्दचित्रो को।

क्योकि मुझे विश्वास है कि

तुम उस पार रहकर भी

मुझे देती रहोगी प्रेरणा

और यही सच्ची भावाजलि

तुम्हारे प्रति होगी मेरी।

उत्कर्षमयी अभिव्यक्ति

'इन्द्रधनुष के पार' कविता सग्रह मे कोमल से कोमलतम भावनाओ को अभिव्यक्ति देने मे कवयित्री श्रीमती शीला जी व्यास सक्षम रही है।

'इन्द्रधनुष के पार की भाषा–शैली हृदयग्राही एव सद्य सलिला की भॉति प्रवाहमयी है। कहीं कोई अवरोध या रूकावट नही और न हीं कहीं बोझिल है। तैल धारवतता एव सहज स्वाभाविकता इसकी विशेषता है।

आज का युग जीवन चारित्रिक प्रदूषण के वात्याचक्र मे फसकर हासोन्मुख एव दिग्भमित सा हो रहा है। प्रस्तुत कविताओ के नीरव व्यग्य और उद्‌बोधन के स्वर भारतीय जीवन–दर्शन के आत्मोत्कर्षकारी उच्चादर्शो का सचरण कर जीवन म नवजागरण के शख का तूयनाद करगी।

विश्वास है पुस्तक सुविज्ञ पाठका को रसबोधमय एव रससिक्त करेगी।

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया